TEXT DARK AND LIGHT

UNIVERSAL LIBRARY
OU_182330
UNIVERSAL LIBRARY

मूल्य तीन रुपए

OUP—67—11-1-68—5,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81 R22D   Accession No. H 3566

Author रसगोत्र, महाराजकृष्ण.

Title दो परतें. 1957.

This book should be returned on or before the date last marked below.

दो परतें

महाराजकृष्ण रसगोत्र

भूमिका लेखक
बच्चन

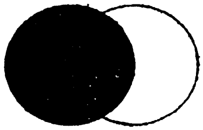

प ह ला सं स्क र ण

प्रकाशक :

प्रेमनाथ रसगोत्र

४/१४, रूपनगर, दिल्ली।

पहला संस्करण

अक्टूबर, १६५७

(सर्वाधिकार प्रकाशक के अधीन)

मुद्रक :

एलबियन प्रेस, कश्मीरी गेट,

दिल्ली।

कादंबरी को

सूची

विषय			पृष्ठ संख्या
प्राक्कथन	...	...	७
भूमिका	...	...	६
पहली परत			
१. तुम कौन हो	...	...	१७
२. हम प्यार किया करते हैं	...	...	१६
३. प्यार किसका है	...	...	२१
४. कौन मेरा कौन तेरा	...	...	२२
५. रोक अपने आँसुओं को	...	...	२३
६. मन होता जाता है अधीर	...	...	२४
७. मैंने तारों से प्रश्न किया	...	...	२५
८. मैं दिन भर करता इंतज़ार	...	...	२६
६. प्रिये, तुम्हारी मधुर याद	...	...	२८
१०. मुझको दोनों ही प्यारे हैं	...	...	३१
११. दो नयन सो रहे हैं	...	...	३३
१२. दर्द से दिल हो भरा	...	...	३५
१३. मेरा नहीं सुखों से नाता	...	...	३७
१४. नव वर्ष आया	...	...	३८
१५. तू दानवीर सच्चा दाता	...	...	४०
१६. मेरा तो संसार उधर है	...	...	४१
१७. भरे-भरे से नयन तुम्हारे	...	...	४२
१८. आज पहली बार मुझमें प्यार जागा		...	४४
१६. फिर यह रात नहीं आएगी	...	...	४६
२०. मुझे तुमसे मुहब्बत हो गई है	...	...	४८

दूसरी परत

२१.	ख़ामोशी चार तरफ़ छाई है	...	...	५३
२२.	मैं कहता हूँ	...	...	५५
२३.	प्रणयिनी, तुझको क़सम	...	...	६२
२४.	बात कुछ शर्म की बेशक है	...	...	६७
२५.	अब नहीं तेरा ख़याल आता है		...	७१
२६.	स्वप्न की छलना	...	...	७३
२७.	न जाने क्यों तुम	...	...	७६
२८.	यात्री	...	...	८२
२९.	पूर्वज अपने बड़े भोले थे	...	...	९०
	टिप्पणी	...	...	९५

प्राक्कथन

अपनी कुछ रचनाओं का यह संग्रह हिंदी काव्य-प्रेमियों के सामने प्रस्तुत करते हुए मुझे हर्ष भी हो रहा है और संकोच भी। अपनी कृति के प्रकाशन पर लेखक का हर्ष स्वाभाविक है, संकोच इसलिए कि मैं स्वयं निर्णय नहीं कर पा रहा हूँ कि मेरी यह रचना कहाँ तक अभिव्यक्ति की परिपूर्णता के उस आदर्श के नज़दीक आ सकी है जिसे मैं कविता का लक्ष्य मानता हूँ। इस संग्रह के प्रकाशन के लिए जिस प्रोत्साहन की आवश्यकता थी वह मुझे अपने मित्र बच्चन से प्राप्त हुआ। इसका नामकरण भी उन्होंने किया।

पहली परत में प्रायः १९४१ और १९५५ के बीच लिखे हुए गीत हैं। केवल अंतिम कविता—मुझे तुमसे मुहब्बत हो गई है—१९५६ की लिखी हुई है। दूसरी परत की पहली को छोड़कर बाक़ी सब कविताएँ मई और जून, १९५६ में लिखी गईं। पहली कविता—ख़ामोशी चार तरफ़ छाई है—१९४४ में लिखी गई थी। १९५६ में इस कविता की केवल दो-एक पंक्तियों में कुछ संशोधन किए गए।

अक्सर लोग कविता को विचार तथा भाव की अभिव्यक्ति का साधन मानते हैं, किन्तु कविता शब्दों पर निर्भर है। शब्द अनुभव की व्यंजना के माध्यम हैं, पर वे स्वयं मानसिक तथा सामाजिक सीमाओं के बन्दी हैं। कवि का काम है शब्दों को उनके बंधनों से मुक्त करना और सीमाओं से ऊपर उठाना। स्वाभाविक बन्धन ही इतने कठिन हैं कि मैंने अपनी परकटी परवाज़ पर तुक की डोर लगाना उचित नहीं समझा। दूसरी परत की कविताओं में अनेक स्थलों पर मैंने छंद और लय के नियमों का भी उल्लंघन किया है, शब्दों को मुक्त करने के ध्येय से।

जीवन पर, जीवन की घटनाओं पर तुक, छन्द अथवा लय के बंधन नहीं हैं, तो भी वे रुचिकर हैं। साधारण बोलचाल में छंद की मर्यादा नहीं, तो भी उसमें कवित्व है, कविता है। साधारण बोलचाल में चाल है, गति

है, उसका अपना छंद है। दूसरी परत की रचनाओं में मैंने उसी वाक्छंद की स्वच्छन्दता का अनुसरण करने का प्रयास किया है।

अपनी रचनाओं की ख़ूबियों या ख़ामियों के बारे में मुझे कुछ कहना उचित न होगा, गो दोनों से मैं एक हद तक परिचित हूँ। यह भार भी मैंने अपने सुहृद बच्चन पर छोड़ा है। मैं न कविता में उनका पासंग हूँ, और न समालोचना में।

बच्चन से मैंने बहुत प्रेरणा पाई है, बहुत प्रोत्साहन भी। इन कविताओं में भी उन्होंने अनेक महत्वपूर्ण संशोधन किए हैं। उनके स्नेह-सौहार्द के लिए मैं सदैव आभारी हूँ।

विदेश मंत्रालय, नई दिल्ली।
१-८-'५७

—महाराजकृष्ण रसगोत्र

भूमिका

मेरे मित्र श्री महाराजकृष्ण रसगोत्र की कविताओं का संग्रह प्रकाशित होने जा रहा है और इसकी मुझे बड़ी खुशी है। भूमिकाएँ लिखने-लिखाने के सम्बन्ध में मेरी धारणा जानते हुए भी जब उन्होंने मुझसे आग्रह किया कि मैं 'दो परतें' की भूमिका लिख दूँ, तो केवल यह समझकर कि इस रूप में संभवतः वे हमारे आपस के स्नेह-सूत्र में एक नई और स्थायी गाँठ लगाना चाहते हैं, मैंने इसे साभार स्वीकार किया। वैसे मैं जानता हूँ, शायद वे भी जानते हैं कि इन कविताओं को भूमिका की आवश्यकता नहीं है।

श्री रसगोत्र से मेरा परिचय सन १९४३-४४ में हुआ। उस समय वे अमृतसर में विद्याध्ययन कर रहे थे। कविता से प्रेम था और कभी-कभी कुछ लिखने का प्रयत्न भी करते थे। बाद को जो कुछ भी लिखते मुझे भेजते थे और मैं उसपर अपनी सम्मति अथवा आलोचना उन्हें लिख भेजता था। इतने समय में कई अवसर ऐसे भी आए जब वे मेरे पास आकर ठहरे या मैं उनके पास जाकर ठहरा और मैंने उनसे सस्वर कविता सुनने का आनन्द भी उठाया। उनके कंठ में मिठास है और भावानुरूप स्वर देने की शक्ति। कवि सम्मेलनों के लिए वे बड़े सफल कवि सिद्ध हो सकते थे।

वे नवयुवक थे, उच्चशिक्षा प्राप्त थे, महत्वाकांक्षी थे और अपनी योग्यता और क्षमता के अनुरूप स्थान पाने के लिए प्रयत्नशील। इस संघर्ष में कई वर्ष बीत गए। स्थान पाने पर उसपर सुव्यवस्थित होने में भी कई वर्ष लगे। इस बीच मैंने उनकी कविताएँ भी प्रायः नहीं देखीं। कोई आश्चर्य भी नहीं हुआ। बहुत से लोग अपनी जवानी में शब्द-रचना का खेल खेलते हैं और प्रौढ़ होने पर जवानी के और बहुत से खेलों के समान उसे भी भूल जाते हैं। कोई कवि बहुत दिनों के बाद अपने कवि सहपाठी से मिला और उसको अपनी कुछ रचनाएँ सुनाने लगा, उसे बड़ा आश्चर्य हुआ, बोला, 'अरे यार, तुम अब भी कविता करते हो, मेरी तो नौकरी लग गई है, शादी कर ली

है, दो बच्चे हैं और तुम अब भी कविता करते हो ?' फिर उन दिनों हमारा जीवन भी बड़ा गतिशील हो गया था। वे आक्सफ़र्ड रहे तो मैं इलाहाबाद; मैं केम्ब्रिज रहा तो वे वाशिंगटन; वे काठमांडू रहे तो मैं दिल्ली। और फिर सहसा समय का एक ऐसा चक्र चला कि हम दोनों एक ही शहर, एक ही दफ़्तर में काम करने को आ गए। आजकल वे विदेश मंत्रालय में अनुसचिव के पद पर हैं और मैं इसी मंत्रालय का हिन्दी विशेषज्ञ हूं।

एक दिन वे मेरे घर आए और उन्होंने मुक्त छन्द में लिखी अपनी एक रचना मेरे हाथ में रख दी। उसे पढ़कर मैंने कहा, जो मैंने समझ लिया था वह ग़लत था, महाराजकृष्ण में कविता का बीज अभी मरा नहीं, अब भी सजीव है और वातावरण अनुकूल मिले तो पल्लवित-पुष्पित होगा। फिर तो वे आठवें-दसवें अपनी एक रचना लाते और मुझे पढ़ने को दे जाते या खुद सुनाते। मैंने दस बरस पहले उनके मधुर कंठ से गीत सुने थे। अब वे मुक्त छंद में लिखी अपनी कविताओं को भाव-विचार के अनुसार स्वरों के उतार-चढ़ाव के साथ सुनाते।

महाराजकृष्ण के गीत मुझे प्रिय लगे थे, कर्ण-मधुर थे, पर उनके अनुभव और अभिव्यक्ति में कोई ऐसी विशेषता न थी जो उनकी अपनी होती। उस समय मैं इसकी प्रत्याशा भी नहीं करता था; उनमें शब्द-मैत्री है, भाव-मैत्री है, वे सहज गेय हैं, काफ़ी है। मुक्त छन्द की कविताओं में जिस तत्त्व ने मुझे सबसे पहले और सबसे अधिक प्रभावित किया वह था महाराज-कृष्ण का व्यक्तित्व, जिसने मुझे धक्का दिया और हिलाया। कला कृतियाँ जो मेरे आगे पाँवड़े बिछाती-सी लगती हैं, मैं उनकी ओर आकर्षित नहीं होता; जो मेरे पास पहुँचते ही मुझे धक्का देती हैं, झिझोड़ती हैं, उनमें मैं कुछ दम देखता हूँ और इस दम को मैं कविता या कला का परम आवश्यक अंश मानता हूँ, प्राण मानता हूं। यह नहीं है तो कृति नपुंसक है, निर्जीव है, मुर्दा है। रसगोत्र ने यह बल, यह साहस, यह हौसला कब, कहाँ से, कैसे प्राप्त किया, मैं नहीं जानता, पर उन्होंने अपनी अभिव्यक्ति से इनको मुझ पर सिद्ध किया, यह मैं जानता हूं।

मैंने उन्हें सलाह दी कि वे इन कविताओं का संग्रह प्रकाशित करें। मैंने उन्हें यह भी राय दी कि इनके पूर्व रचित गीत भी इसमें रहें, जिनसे बाद

की कविताओं में जो व्यक्तित्व अभिव्यक्त हुआ है उसका उभार देखने में उनसे सहायता मिले। इस प्रकार संग्रह का नाम 'दो परतें' दिया गया।

हिंदी काव्य में मुक्त छंद का पवेश करने का श्रेय निराला जी को है। तब से कवियों ने एक प्रकार के वर्णिक अथवा मात्रिक आधार पर मुक्त छंदों में रचनाएँ की हैं। महाराजकृष्ण की रचनाओं में भी दोनों प्रकार के प्रयोग हैं। वर्णिक की उदाहरण हैं ये पंक्तियाँ:—

मैं कहता हूँ
तुम अपने को
मुझे समर्पित
कर दो और ब-
ना लो मुझको
अपना यह छो-
टी-सी बात अ
गर मंज़ूर न
हो तो जो भी
अपनी मर्ज़ी
में आए वह
कर लो कुछ दिन, आदि-आदि—

मात्रिक की हैं:—

प्रणयिनी, तुझको क़सम
प्यार की इन तीन रातों की,
मत मुझे रोक,
प्यार के तीन दिवस काफ़ी हैं,
अब मैं विदा लेता हूं।

वास्तव में इसी मात्रिक लय पर लिखी कविताओं के आधार पर संभवतः उनका दावा है कि उन्होंने 'वाक्छन्द' का प्रयोग किया है। हिंदी पद्यों में बोलचाल की लय का अभाव देख, उन्होंने यह काम उर्दू के शेरों की लय से लिया है। इन कुछ पंक्तियों को देखिए:—

प्यार के तीन दिवस काफ़ी हैं,
प्यार की मंज़िलें अनिश्चित हैं,
यह न पूछ (अ) ब मैं कहाँ जाता हूँ,
उस रो (ज) चौराहे पर तुझसे जो मुलाक़ात हुई,
विधि का संयोग हमें तूने स्वयं माना था,
मंज़िलें और अभी बाक़ी हैं,
तू अमर है ? या अमर मैं हूँ (कि) मुहब्बत हो अमर,
नित्य बढ़ता ही चला जाता है,
मोह की माया में, गति धर्म से च्युत उनका पतन होता है,
प्यार की कोटि कशिश के भीतर,
अब मगर राहें अलग होती हैं,
अब अगर हम न बढ़ें विलग पथों पर अपने,
प्यार की खोज अमर है लेकिन,
क़ैद अब तेरी मुहब्बत की नहीं लागू है,
मेरे गतिपूर्ण चरण चंचल हैं, आदि-आदि

मुक्त छंद की ६ कविताओं में से सात कविताओं में इस तकनीक का उपयोग किया गया है और यह इनके मुक्त छंद को एक विशेषता देती है; एक नाटकीयता और गति देती है जो हिंदी मुक्त छंदों में पहली बार मेरा ध्यान आकर्षित कर रही है। 'मैं कहता हूँ' में वर्णिक की प्रायः समलय है। 'यात्री' में समलयता में विषमता लाने का प्रयत्न भी किया गया है, पर यह नवीन नहीं है। इसका प्रयोग पहले भी हो चुका है।

हिन्दी तुकांत पद्यों में शायद उर्दू की लय को लाने का जो प्रयोग हुआ है वह मेरी समझ में असफल हुआ है। हिन्दी ग़ज़ल और हिन्दी रुबाइयों के अनगढ़, भोंडे और भद्दे कितने ही उदाहरण दिये जा सकते हैं। एक प्रयोग महाराजकृष्ण ने भी किया है; परिणाम मेरी समझ में बहुत अच्छा नहीं हुआ, 'मुझे तुमसे मुहब्बत हो गई है', पर मुक्त छन्दो में उर्दू की लय जैसे गलाकर ढाल दी गई है। अगर हिन्दी मुक्त छन्दों को बोल-चाल की गति देनी है, तो उर्दू से अनिवार्य रूप से सहायता लेनी होगी। हिन्दी के पद्यों में बोलचाल का प्रवाह कहाँ है, नहीं तो उर्दू शेरों के समान हिन्दी के सैकड़ों पद्य भी लोगों की ज़बान पर न चढ़ जाते।

इसका कुछ सम्बन्ध हिन्दी काव्य की शब्द-योजना से भी है। तुकांत हिन्दी कविता ने तो छायावाद की कोषवासिनी, संस्कृतमयी, दुरूह, अमूर्त पदावली छोड़ दी, पर हमारे मुक्त छन्द में वह अब भी घुसी हुई है; शायद उसे गंभीरता देने के ध्येय से। जहाँ वह एकदम छोड़ दी जाती है वहाँ रचना गद्य के धरातल पर उतर आती है। यही इस शैली का ख़तरा है। महाराजकृष्ण सरल शब्दावली के साथ भी इस ख़तरे से अपने को बचा गए हैं। उनके बोलों में कवित्व के टकसाली सिक्के की ठनकार है। इसका विश्लेषण मैं सुरुचिपूर्ण पाठकों पर छोड़ देना चाहूँगा।

विषयों की बात मैंने नहीं की। सबल व्यक्तित्व किसी भी विषय को मौलिक दृष्टिकोण से देख सकता है। मैं तो चाहता हूँ कि व्यक्तित्व इतना आत्मलीन हो कि उसे अभिव्यक्ति में वचन-प्रवीणता प्रदर्शित करने की चेतना ही न रहे। शायद महाराजकृष्ण इस विषय में मुझसे सहमत न हों।

मैं उनके विकास को कौतूहल और उत्सुकता से देखता रहूँगा।

विदेश मंत्रालय, नई दिल्ली।
५-८-'५७

—बच्चन

पहली परत

तुम कौन हो

चंद्रमा की विमल, स्वर्णिम रश्मि-सी तुम
कौन हो ?
तुम कौन हो ?

कमल की नव पल्लवी-सी कोमला तुम
कौन हो ?
तुम कौन हो ?

मधुर वीणा के स्वरों-सी मोहिनी तुम
कौन हो ?
तुम कौन हो ?

आग की उठती लटा-सी सुंदरी तुम
कौन हो ?
तुम कौन हो ?

कौन जीवन-द्वंद्व में उन्मुक्त लय-सी
कौन हो ?
तुम कौन हो ?

स्वर्ग की वरदान हो तुम
या कि माया-मूर्त्ति कोई ?

या अधूरी ज़िंदगी की
स्वप्नमय परिपूर्ति कोई ?

मुस्कराहट में नयन की बात मन की
मत छिपाओ-
यह बताओ,
कौन हो ?
तुम कौन हो ?

हम प्यार किया करते हैं

दिन के क्रम के श्रम को बिसार,
तज जीवन के अवसाद-भार,
निद्रा की मधुर गोद में जब
सो जाते दुनियावाले सब,

तब दूर कहीं इस जग से,
अपनी कल्पित दुनिया में,
अपनी कल्पित बाला से
हम प्यार किया करते हैं।

हम प्यार किया करते हैं।

यौवन उन्मादों से सजकर,
उर - कलशों में लौ का मद भर,
मस्ती से, इतरा - इठलाकर,
दुनियावालों की बचा नज़र,

लबरेज़ अधर का प्याला
ले आती साक़ीबाला;
क्या दौर गिने मतवाला !
हम ख़ूब पिया करते हैं।

हम प्यार किया करते हैं।

क्यों जलते पंडित देख - देख ?
क्यों कुढ़ते मुल्ले और शेख़ ?
हम इनका लेते ही क्या हैं ?
ये हमको देते ही क्या हैं ?

हम तो अपनी ही बातें,
कुछ भोली - भाली बातें,
औ मीठी - प्यारी बातें
दो - चार किया करते हैं;
हम प्यार किया करते हैं।

कुछ पाप नहीं करते हैं,
हम प्यार किया करते हैं।

प्यार किसका है

चाँद, तारों से सुसज्जित,
श्वेत शिखरों से सुशोभित,
वायु, तृण, तरु, फूल, फल की
सरस गन्धों से सुगन्धित,
यह विशाल, अनूप औ' लालित्यमय संसार
किसका है ?

बादलों से जो बरसता,
और झरनों से बिखरता,
अप्सराओं - सी समुन्दर
की लहरियों पर निखरता,
और सन्ध्या के स्वरों में फूटता उद्‌गार
किसका है ?

सृष्टि के प्रत्येक कण में,
हर घड़ी, हर एक क्षण में,
चल रहा संघर्ष कितनी
ही विरोधी शक्तियों में,
पर इन्हें बाँधे हुए है जो नियम में, प्यार
किसका है ?

कौन तेरा, कौन मेरा

बीच मेरे और तेरे
क्यों रहे व्यवहार छल का ?
देख पाया कौन अपनी
आँख से संसार कल का ?
यह नहीं निश्चित कि कल को बन सकेगा
कौन मेरा, कौन तेरा।

मत मुझे दे प्यार अपना,
मैं नहीं लौटा सकूँगा ;
मत समझ, भोली, सदा मैं
गीत ऐसे गा सकूँगा ;
यह नहीं निश्चित कि कल को रह सकेगा
साथ मेरा और तेरा।

आ, विदा ले लें, अलग हैं
आज से राहें हमारी,
तम, तड़ित, तूफ़ान में हो
है पहुँचना पार, प्यारी;
यह नहीं निश्चित कि फिर कब हो सकेगा
मिलन मेरा और तेरा।
कौन मेरा, कौन तेरा।

रोक अपने आँसुओं को

तू रहा वंचित सुखों से,
बच न पाया, पर, दुखों से,
चिर जलन, चिन्ता, विरह की
है बनी तेरी कहानी ;
पर अकेला तो नहीं तू
इस विशाल वसुंधरा पर—
रोक अपने आँसुओं को।

विश्व ने अवहेलना की,
विश्व ने तुझ से घृणा की;
तू गया समझा अमंगल
और अशकुन की निशानी ;
पर अकेला तो नहीं, जग
ने किया जिसका निरादर—
रोक अपने आँसुओं को।

विश्व से तू मत गिला कर;
भूल तेरी ही भयङ्कर,
चाह में निज साध की जो
विश्व की सीमा न जानी;
तू अकेला तो नहीं, असफल
रहा जो याचना कर—
रोक अपने आँसुओं को।

मन होता जाता है अधीर

यह वर्षा-ऋतु की एक शाम,
नभ में मेघों की धूम-धाम,
घन घन-गर्जन, सन-सन झंझा
छाया है सब दिशि तम गँभीर—
मन होता जाता है अधीर।

अब शुरू हुई बूंदा-बाँदी,
फिर छम-छम-छम वर्षा आई,
कुछ दूरी पर कल-कल, छल-छल
करती जाती सरिता सुनीर—
मन होता जाता है अधीर।

मैं एकाकी सूनेपन में,
सन्नाटा मेरे आँगन में;
फिर आई तेरी याद, सुमुखि,
बनकर जीवन की सहज पीर—
मन होता जाता है अधीर।

मैंने तारों से प्रश्न किया

मैंने तारों से प्रश्न किया :–

मैं प्रति निशि यह देखा करता
तुम सदा मूक, निश्चल, गँभीर;
क्या नहीं तुम्हारी दुनिया में
इस जग की चिन्ता, जलन, पीर ?

तुम मौन हुए हो क्या पाकर ?
मैं तो रोता दिन - रात यहाँ ;
क्या विरह, विवशता, कङ्गाली
का नहीं शेष अस्तित्व वहाँ ?

मने तारों से प्रश्न किया ।

यों दिया सितारों ने उत्तर :–

दुख अपना ही लगता महान,
मन कौन किसी का सका जान ?
ज्वाला सब के अंदर जलती,
पीड़ा सब को अपनी खलती ;

हम दुखी, दीन, अति पीड़ित, पर
तुममें औ' हममें यह अंतर—
तुम रो - रोकर झेलते जिसे
हम सह लेते चुपचाप उसे :

यों दिया सितारों ने उत्तर ।

मैं दिन भर करता इंतज़ार

रजनी आए, निशिकर निकले,
तारों की धुँधली छाओं में
कोई चोरी - चुपके आकर
खटकाए मेरे बंद द्वार :
मैं दिन भर करता इंतज़ार।

वह गई, मुझे जाना होगा ;
फिर लौट कहाँ आना होगा ?
यह ज्ञात, न सूझे सत्यों से,
लेकिन, मिलता दिलको क़रार :
मैं दिन भर करता इंतज़ार।

यह रात नया क्या लाएगी,
कलरात न जो लेकर आई ?
केवल नवीनता भर ग़म में
फिर कर जाएगी नया प्यार :
मैं दिन भर करता इंतज़ार।

प्रत्येक दिवस ढल जाने पर
आती है रजनी सज सुन्दर ;
मैं भी कुछ अश्रु पिरो अपने
यौवन का कर लेता सिँगार :
मैं दिन भर करता इंतज़ार।

मैं किसी तरह दिल के अंदर
ही रख लेता दिल की दिन भर,
पर नहीं निशा के परदे में
रुकता मन में मन का गुबार:
मैं दिन भर करता इंतज़ार।

कुछ करती मेरा मन हलका,
उसका मन-मोदन हो तो क्या !
उस स्वर्ग बसी तक जाती ही
होगी मेरी आहोपुकार :
मैं दिन भर करता इंतज़ार।

तुम्हारी याद

प्रिये, तुम्हारी मधुर याद
आई,
लाई
नव-नव पीड़ा, नव-नव विषाद ।

कर बीती बातों का सुमरन
जल उठे हृदय के मर्म घाव,
हो उठा आज विह्वल जीवन,
व्याकुल तन-मन
करके,
मधुरे,
तेरा चिन्तन ।
प्रिये तुम्हारी मधुर याद
आई,
लाई
नव-नव पीड़ा, नव-नव विषाद ।

सरिता सुनीर,
उन्मत्त, मन्द, शीतल, सुरभित,
सुखमय समीर,
मृदु, सलज सुमन
करते नर्तन;

वन उपवन में
केकी-कूजन, कोकिल-गायन;
ऊँचे - ऊँचे हिममय सुंदर
दिनकर-प्रदीप्त शुभ शैल - शिखर;
नभ में रवि - शशि-तारक झाँकी,
छविमय, बाँकी;
तरु-लता कुंज में छिपी हुई
चपला चान्द्री के हाव-भाव :—
ये दृश्य सभी,
जिनमें हम करते थे विहार,
रहते प्रसन्न जिनको निहार,
सुंदर अब भी
यह दृश्य सभी;
पर इनमें जीवन का अभाव
इनमें कटु जड़ता का प्रभाव।
सुमुखि, तुम्हारे बिना आज
जीवन अपना
नीरस,
अपूर्ण,
सूना-सूना।

मेरा यौवन,
मेरा प्रमाद,

मेरा सुख,
मेरा आह्लाद,
बन गए आज पीड़ित प्रलाप,
चिन्ता कुरूप,
अभिशाप रूप,
हो उठा आज विचलित जीवन,
विचलित तन-मन
करके
मधुरे,
तेरा चिन्तन।

प्रिये, तुम्हारी मधुर याद
आई,
लाई
नव-नव पीड़ा, नव-नव विषाद।

मुझको दोनों ही प्यारे हैं

जीवन की पीड़ा भी, सुख भी
मुझको दोनों ही प्यारे हैं।

जीवन की ज्वाला से, जीने
के संकट से भागे कायर,
किन्तु अपरिचित मृत्युपुरी का
भय भी उसको करता कातर;

भाग न पाए यदि जीवन से
तो न मरण से ही बच पाए,
परिचित और अपरिचित दोनों
की दुविधा में मन अकुलाए;

जीवन में यदि कठिनाई तो
सहज मरण ही कब था, प्यारे;
स्वर्ग बटोही के पथ में भी
तो बिखराये अंगारे हैं।

जीवन की पीड़ा भी, सुख भी
मुझको दोनों ही प्यारे हैं।

ममता-मोह, निठुरता-निर्ममता,
सब एक बराबर गुण हैं,
जग औ' जीवन सुन्दर और
असुन्दर के प्रिय सम्मिश्रण हैं,

नहीं पाप का भय है मुझको
और न इच्छा पुण्य कमाऊँ,
नहीं साधना, निश्चेतन हो
विश्व-चेतना में खो जाऊँ;

जीवन अगर पाप है, तो हो
मेरा नाम गुनहगारों में;
मुझपर मोक्ष - मुक्ति के
जादू और प्रलोभन सब हारे हैं।

जीवन की पीड़ा भी, सुख भी,
मुझ को दोनों ही प्यारे हैं।

अगनित ज्ञानी-ध्यानी मुनियों
ने दुनिया से नाता तोड़ा;
और विवेकी गौतम ने जीवन
की माया का भ्रम फोड़ा;

कहते हैं निर्वाण-प्राप्त वे
छूटे जन्म-मरण के भय से,
किन्तु किसे मालूम कि उनपर
बन्दिश कितनी, बन्धन कैसे ?

मैं इस दुनिया का बन्दी, तो
वे भी परलोकों के बंदी;
एक मुक्त-बंदी दोनों है
नाम सिर्फ़ इनके न्यारे हैं।

जीवन की पीड़ा भी, सुख भी
मुझ को दोनों ही प्यारे हैं।

दो नयन सो रहे हैं

दो नयन थककर प्रतीक्षा
से तुम्हारी सो रहे हैं।

खोजकर सौ सृष्टियों को
था तुम्हें अपना बनाया ;
सौ युगों की साधना से
जब तुम्हारा प्यार पाया,
"यह नहीं अधिकार तेरा"—
काल बोला मुस्कराकर ;
दो नयन थककर प्रतीक्षा
से तुम्हारी सो रहे हैं।

उस अपरिचित लोक की
मजबूरियों को कौन जाने ?
मर्त्य हम हैं, तो प्रणय की
अमरता को कौन माने ?
लौटकर आया न कोई भी
कभी उस पार जाकर :
दो नयन थककर प्रतीक्षा
से तुम्हारी सो रहे हैं।

व्यर्थ आशा, व्यर्थ सुख की
चाह, जीवन की लगन भी,
व्यर्थ निज असमर्थता का
ज्ञान, औ' दिल की जलन भी;

व्यर्थ अपनी वेदना की
चेतना, चिंता निरंतर :
दो नयन थककर प्रतीक्षा
से तुम्हारी सो रहे हैं।

दर्द से दिल हो भरा

दर्द से दिल हो भरा, पर
आँख में आँसू न आए।

है मुनासिब ज़िन्दगी से आज
तू पहचान कर ले,
जाँच ले अपनी निबलता,
शक्ति का अनुमान करले ;

आँधियों से सामना है,
बिजलियाँ तुझपर गिरेंगी,
एक दुनिया की विनाशक
शक्तियाँ तुझपर घिरेंगी ;

पर तक़ाज़ा शान का तेरी
कि तू भी ख़म न खाए,
तू प्रलय की चोट खाकर
भी प्रणय के गीत गाये ।

दर्द से दिल हो भरा, पर
आँख में आँसू न आए।

तू हृदय की आग को
अपने हृदय में ही सँजोले,
औ' तहे-दिल में रहें दिल
के सभी दाग़ोफफोले,

हो जलन कितनी जिगर में,
पर तुझे है मुस्कराना,
वरना तेरी बेख़ुदी पर
खिलखिलायेगा ज़माना ;

फूटता है गीत बनकर
स्वर अगर तो फूटने दे,
पर शिकायत होंठ पर
तेरे कभी आने न पाये।

दर्द से दिल हो भरा, पर
आँख में आंसू न आए।

ज़िन्दगी अपनी बना ले
तू तपस्या का तराना,
साधना जिसकी मुहब्बत,
लक्ष्य अपने को मिटाना ;

कामना निःसीम तेरी,
कल्पना तेरी अपरिमित,
पर तुझे रहना पडेगा
आज दोनों से अपरिचित;

शक्ति हो तुझमें कि माँगे
तो मिले वरदान जन्नत,
किन्तु मन में मांगने की
भावना आने न पाये।

दर्द से दिल हो भरा, पर
आँख में आँसू न आए।

मेरा नहीं सुखों से नाता

मैं मानव हूँ,
मेरा नहीं सुखों से नाता।

अपमानित हूँ, अभिशापित हूँ,
मेरा देवों से विरोध है,
मेरी वाणी पर निरोध है,

दुख सहता हूँ, चुप रहता हूँ,
मुझे स्वर्ग ने ठुकराया है,
मैं मानव हूँ,
मेरा नहीं सुखों से नाता।

मेरी दुनिया में विह्वलता,
चिन्ता, पीड़ा का शासन है,
कङ्गाली है, क्षुधा-जलन है,
है सवर्स्व यही वसुधा का ;
सहन-शीलता मेरा गुण है,
मैं मानव हूँ,
मेरा नहीं सुखों से नाता।

यह उनका अधिकार कि मुझपर
आसमान की चोट गिरायें,
धन्य धरा की आकांक्षायें,
गर्वोन्नत जिनसे मेरा सिर,
गर्वीली मेरी छाती है ;
मैं मानव हूँ,
मेरा नहीं सुखों से नाता।

नव वर्ष आया

नव हर्ष ले नव वर्ष आया

अनगिनत नूतन उमीदें,
अनगिनत नूतन उमङ्गें,
प्यार नव, शृङ्गार नव-नव
और नव आशा - तरंगें;
आज दुनिया के लिए
कितने नये उपहार ले
नव वर्ष आया !
नव हर्ष ले नव वर्ष आया।

आज रँगरलियाँ मनाओ,
मिल ख़ुशी के गीत गाओ,
जो कही कड़वी, विषैली
या सुनी, सब भूल जाओ;
आज दुनिया के लिए
कितने नये उद्‍गार ले
नव वर्ष आया !
नव हर्ष ले नव वर्ष आया।

एक-सी दो क्षण न रहती,
हर घड़ी दुनिया बदलती,
और जीवन को बनाती
है मनोरम गति समय की;
आज दुनिया के लिए
नव शक्ति का संचार ले
नव वर्ष आया!
नव हर्ष ले नव वर्ष आया।

भरे-भरे-से नयन तुम्हारे

भरे-भरे-से नयन तुम्हारे,
मेरा हियरा भरा-भरा-सा।

तुमको खोकर मैं ने दुनिया
में ऐसा क्या अपनाया है,
जो कि तुम्हारा चैन लुटा, दृग
भर आए, मन अकुलाया है ?

और उतर आईं तुम अंबर
की ऊंचाई से धरती पर,
मेरी संस्मृतियों की प्रतिमा,
सुधियों की चेतनता बनकर ;

क्या वह मांग तुम्हारी, जिसका
पूरा होना आवश्यक है ?—
डरे - डरे - से नयन तुम्हारे,
मेरा जियरा डरा-डरा-सा।

भरे - भरे - से नयन तुम्हारे
मेरा हियरा भरा-भरा-सा।

निद्रा का वह देश तुम्हारा,
कमी कौन तुमको अकुलाती,
जो तुम सजल-दृगी सपनों में
आ-आ मेरा मन बिलखाती ?

तुमने तो बाँहें फैला दीं,
मैं ही उन तक पहुँच न पाया;
करुणामयि, मेरी निर्बलता
का तुमने क्या व्यंग्य बनाया !

जीवन और मरण दोनों के
बीच घिरा हूं मैं कुछ ऐसा,
इस दुविधा में लगता मैं कुछ
जिया-जिया, कुछ मरा-मरा-सा।

भरे-भरे-से नयन तुम्हारे,
मेरा हियरा भरा-भरा-सा ।

एक बूँद का अभिलाषी मैं,
तुम भर नयनों में ले आईं
धार सुधा की : बिलग कोर से
बूँद न, पर, अधरों तक आई—
आज हमारे बीच गगन छलिया
ने अपना पाट पसारा;
स्वप्न और सुधि तक ही प्रेयसि,
सीमित है सम्बन्ध हमारा :

मेरे और तुम्हारे नाते
के लेकिन, ये चिर-साखी हैं,
भरे-भरे-से नयन तुम्हारे,
मेरा हियरा भरा-भरा-सा ।

भरे-भरे-से नयन तुम्हारे,
मेरा हियरा भरा-भरा-सा ।

आज पहली बार मुझ में प्यार जागा

आज मन में ज़िन्दगी की चाह जागी,
आज मेरे हृदय में उद्‌गार जागा।

है नया अन्दाज़ ऐसा आसमां का,
और रुख़ बदला नया ऐसा धरा का,
आज लगती है मुझे दुनिया नई-सी,
प्यार के प्रिय रंग में डूबी हुई-सी,
आज तृण-तृण और कण-कण के लिए
मेरे हृदय में, प्राण में सत्कार जागा।

आज मन में ज़िन्दगी की चाह जागी,
आज मेरे हृदय में उद्‌गार जागा।

फूल बन के मुस्कराये किस अदा पर ?
और कलियों की सुरभि किसपर निछावर ?
कौन वह जादू-नज़र, जिसके इशारे
राग भरते हैं पखुरियों में सकारे,
और जिसके रूप में निज को भिगोने
आज मेरे गीत में शृंगार जागा ?

आज मन में ज़िन्दगी की चाह जागी,
आज मेरे हृदय में उद्‌गार जागा।

आज मन को चाह पर काबू नहीं है,
आज मुझपर लाज भी लागू नहीं है;
मैं उठा हूं, मान्यता, अपमान-मानों
की सतह से आज ऊपर, सत्य जानों,
मैं उसीका हूं मुझे जो आज छू दे;
आज पहली बार मुझ में प्यार जागा।

आज मन में ज़िन्दगी की चाह जागी,
आज मेरे हृदय में उद्‌गार जागा।

फिर यह रात नहीं आयेगी

घिर आये हैं मेघ गगन में,
घिरा अँधेरा है वसुधा पर,
तुम हो, तनहाई भी है,
तूफ़ान मचा है दिलके अन्दर;
आज हृदय से हृदय लगाकर
        काया का कुछ क़र्ज़ चुका लो–
फिर यह रात नहीं आयेगी।

अनुचित होगा मन की शर्मीली
माँगों को मुँह पर लाना;
शब्द हृदय का राज़ छिपाने
का हैं केवल एक बहाना;
आज नयन से नयन मिलाकर
        कुछ पलकों का भार बँटा लो–
फिर यह रात नहीं आयेगी।

लौट नहीं आयेगी फिर-फिर
यह निशि; यह तनहाई, ये धन,
लौट नहीं आयेंगे फिर-फिर
मिलन मुहूरत के मधुमय क्षण;
आज अधर से अधर लगाकर
        इन घड़ियों को अमर बना लो–
फिर यह रात नहीं आयेगी।

यह प्रणयातुर रात प्यार के
सब सामान सजाकर आई;
इसकी अवहेला में प्यारी,
कुछ अपनी भी तो रुसवाई;
आज न इसका मन मैला हो,
तुम कुछ अपना मान भुला लो—
फिर यह रात नहीं आयेगी।

मुझे तुमसे मुहब्बत हो गई है

नहीं दिल, औ' दिमाग़ अपना नहीं है,
न दिन अपना, न रात अपनी रही है,
इजाज़त दो कि कह दूँ अनकही मैं—
मुझे तुमसे मुहब्बत हो गई है।

करूँ मैं चाँद से शिकवा भला क्या ?
सितारों से मुहब्बत का गिला क्या ?
नहीं मुझको शिकायत आसमाँ से—
मुझे तुमसे मुहब्बत हो गई है।

सितारे, चाँद, बूढ़ा आसमाँ यह—
न इनकी अक़्ल की है दास्ताँ यह ;
गवाही इन हसीनों की मगर है—
मुझे तुमसे मुहब्बत हो गई है।

गली की लड़कियाँ ज़ालिम-नज़र हैं,
तुम्हारे राज़ से ये बाख़बर हैं,
बचाकर आँख मुझसे कह गई हैं—
तुम्हें मुझसे मुहब्बत हो गई है।

ज़बाँ पर बन्दिशें चाहे लगाओ,
लबों में मुस्कराहट को दबाओ,
सिन्दूरी आँख लेकिन कहगई-सी—
तुम्हें मुझसे मुहब्बत हो गई है।

समाँ कुछ कर गुज़रने पर तुला है,
कहो तो, क्या हमें करना भला है ?
मुआफ़ी हो मुझे मासूमियत की--
मुझे तुमसे मुहब्बत हो गई है।

किसी पापिन सहेली को ज़रा-सा
बुलाकर पूछ लो लाज़िम हमें क्या,
कि जिससे लाज रह जाए समय की--
मुझे तुमसे मुहब्बत हो गई है।

दूसरी परत

ख़ामोशी चार तरफ़ छाई है

ख़ामोशी चार तरफ़ छाई है,
बीत चुकी आधी से अधिक रात,
ठंड में ठिठुरे हुए, सिकुड़े हुए
चुप हैं सहमे हुए झुण्ड तारों के ;

चाँद, लाश बेजान,
सफ़र से बेदिल होकर
राह की उतराई में रुक-सा गया लगता है;

घास में दुबके हुए कीड़ों के परों पर
जम गई ओस की बूंदें जो
चाँदनी में ख़ूब चमकती हैं;
ख़ामोशी चार तरफ़ छाई है।

दर्द की तेज़ी से भर्राई हुई
एक चीख़ उठी,
लरज़ कर फैल गई
आसमाँ में और धरती पर ;
ख़ामोशी टूट गई।

उस घने पेड़ की चोटी पर
वह किसी चील का घर है,
जिसमें ज़िन्दगी ले रही है अंगड़ाई :
लालायित रवि-किरण नाच उठी,
बेख़ुद लोट गई, लिपट गई
उसके प्रत्येक तिनके से ।

मैं कहता हूँ

मैं कहता हूँ,
तुम अपने को मुझे समर्पित कर दो,
और,
बना लो मुझको अपना ;
यह छोटी-सी बात
अगर मंजूर न हो, तो
जो भी अपनी मर्ज़ी में आये वह कर लो ;
कुछ दिन और तुम्हारी मस्ती के बाक़ी हैं।

तुम अल्हड़ हो,
बहुत हठी हो,
अहंकारिणी हो,
चपला हो,
महामूर्ख हो,
गोया एक युवा रमणी के
तुमने सारे गुण पाये हैं ;
बुद्धि-विहीना हो यदि तो क्या ?–
सुन्दरता को नहीं अक़्ल की आवश्यकता।
और देखता हूँ
कि क्रोध की मुद्राओं से भी परिचित हो;

मुझे ख़ूब मालूम
नहीं तुमको भाती है
मेरी यह तकरार,
मगर सुननी ही होगी
जो भी खरी, कड़ी, कड़वी कहता हूँ ;
बहुत सुन चुकीं चिकनी, चुपड़ी,
मीठी बातें,
बहुत तुम्हारे नाज़ उठाए मैंने, प्यारी,
और सहे बहुतेरे नख़रे ;
अब कुछ फ़र्ज़ अदा करता हूँ
प्रेमी का, इच्छुक का, अपना।
जो भी सीधी-सच्ची बात ज़ुबाँ पर आये,
आज कहे देता हूँ।

मत भवें चढ़ाओ,
नीलाम्बर से तने हुए सुन्दर माथे पर
शिकन झुर्रियाँ पड़ जाएँगी।

खिंची भृकुटियों के गर्वीले संकेतों से
मत उस दिन को पास बुलाओ,
जबकि तुम्हारे रँगे सेब से
लाल कपोलों की इस चिकनी,
नर्म खाल पर
सीधी, तिरछी, टेढ़ी-मेढ़ी,

व्यंग-भरी भद्दी रेखाएँ
गड़ जाएँगी,
और पूर्णिमा के निशिकर-सा वदन तुम्हारा
फीका पड़कर
बन जाएगा उस दर्पन की भाँति
कि जिसने
नई लता की नवल पल्लवी-सी
सुकुमारी को देखा हो
परिणत होते
एक अप्रतिभ प्रौढ़ा में।

इने-गिने यौवन के दिन सब पर आते हैं,
लेकिन शाश्वत सत्य
बुढ़ापे का मत भूलो,
जो अब बीत रहा है मुझपर
तुमपर भी आनेवाला है;
इसीलिए मैं फिर कहता हूँ—
तुम अपने को मुझे समर्पित कर दो,
और,
बना लो मुझको अपना;
नहीं तुम्हारी मस्ती के दिन शेष बहुत अब।

कुछ दिन और तनो, अकड़ो,
मद में झूमो,

जब दिन हिसाब का आये
तो तुम बैठ देखना
अपने मुख में बिम्बित
स्याह कलङ्कों को
और समय के अङ्कों को,
रेखाओं को,
फिर उनकी गणना कर लेना
उन घावों से,
उन दाग़ों और लकीरों,
उन रेखाओं से,
जो भृकुटि-धनुष से चले नयन के तीरों से,
जो केश-कुन्तलों की काली ज़ंजीरों से,
जो जली जीभ की तेज़ नुकीली धारों से,
ग़रज़ कि जो हथियार तुम्हारे हाथ लगे
उनसे तुमने
जो दाग़, लकीरें, घाव गढ़े
मेरी इस सहनशील छाती पर।

तुम ज़ुल्म करो, भूलो मत लेकिन,
मज़लूमों के समय चुकाता है बदले।

अल्हड़ लड़की,
है सुनी कहानी क्या तुमने
लैला-मजनूँ की,

जो मुझको यों तरसाने की
तुमने ठानी ?
बेशक तुम मेरी लैला हो;
सच है, उसने क्या पाया था
जोकि नहीं तुमको हासिल है ?
लैला का सौन्दर्य तुम्हारा,
और जवानी तुमने पाई ऐसी
जिस का वर्णन करना नामुमकिन है ;
आज तुम्हारे संकेतों पर
बनती और बिगड़ती हैं
महफ़िलें मनचले जाँबाज़ों की;
लैला की नादानी भी तुमने पाई है,
पर जनून से मजनूं के तुम नावाक़िफ़ हो।

वह मजनूं,
जिसकी तुमने है सुनी कहानी,
फ़ारस का रहनेवाला था,
भोला था,
उसका था एक ख़ुदा,
जिसपर निसारकर तन, मन, जीवन
उसने ली थी शरण क़ब्र की :
एक बार गड़ रूह क़ब्र में
नहीं कभी उठती है ऊपर।
किन्तु तुम्हारा तो है उस काफ़िर से पाला,

जो कि उपासक है
धरती की हर देवी का;
आज तुम्हारी निर्ममता ने, हठ ने ली है
उसकी संचित साधना-शक्ति से टक्कर।

मत उपहास करो मेरी जर्जर काया का,
जो कि तुम्हारी क्रूर पुण्यता,
या मेरे प्रति निर्दयता-भर का प्रमाण है।
कुछ दिन के पश्चात्
छोड़कर इस शरीर को,
जिसको छिलनी किया तुम्हारे आघातों ने,
प्रेत बनेगी मेरी आत्मा,
और बराबर मँडरायेगी गिर्द तुम्हारे,
निशिदिन, प्रतिपल;
और तुम्हारे प्रेतग्रस्त सपनों में अपनी
उत्कण्ठित, लालसा-भरी, लम्बी औ' पतली,
चतुर उंगलियों से तुमको छू-छेड़
अपने मन को बहलायेगी।

तब न तुम्हारी एक चलेगी;
रूहें जबरदस्त होती हैं–
पछताओगी।
प्रेत-ग्रस्त क्या जी पाते हैं?
तड़प-तड़पकर मर जाओगी;

रोक स्वर्ग की राह खड़ा हूँगा मैं लेकिन,
औ' न रास्ता दूँगा, जब तक
बात न मेरी मानोगी तुम।

देखेंगे तब द्वारपाल वैकुण्ठधाम के
धृष्ट, गोकि निष्कपट,
हमारी क्रीड़ाओं को,
आलिङ्गन-चुम्बन के मद को,
क्या सोचेंगे ?
औ' प्रवेश करने देंगे वे तुमको
इन्द्रलोक में ?
मेरी पूछो तो कहता हूँ,
उनकी नज़रों से ओझल हम
वसुंधरा पर जो कुछ भी करना है
कर लें तो अच्छा है;
और इकट्ठे स्वर्ग-मार्ग पर चलें बाद में;
तुम अपने को मुझे समर्पित कर दो,
और बना लो मुझको अपना
ताकि स्वर्ग अपना हो जाए!

प्रणयिनी तुझको क़सम

प्रणयिनी, तुझको क़सम
प्यार की इन तीन रातों की,
मत मुझे रोक;
प्यार के तीन दिवस काफ़ी हैं,
अब मैं विदा लेता हूँ।

प्यार की मंजिलें अनिश्चित हैं,
और अज्ञात है पथ,
यह न पूछ,
अब मैं कहाँ जाता हूँ;
उस रोज़, चौराहे पर
तुझसे जो मुलाकात हुई,
उसका भला क्या निश्चय था ?
विधि का संयोग हमें–
तूने स्वयं माना था–
पास लिवा लाया था
प्यार की उस एक मंज़िल पर।
सफ़र जारी है,
राह बहुत लम्बी है,
मंजिलें और अभी बाक़ी हैं।

पथ के उस मोड़ की ओझल का
आकर्षण
पाँव में गति भरता है;
अब मुझे जाने दे।

बेवफ़ाई की शिकायत ख़ूब रही !
मैंने ज़रूर
माँगी थी मुहब्बत तुझसे,
पर यह वफ़ादारी का
बोझ बहुत भारी है;
तू जिसे कहती है वफ़ा,
वह जनाज़ा है मुहब्बत का,
प्यार की ज़िन्दगी का सबूत है
भौंरे की उड़ान;
और अस्थिरता
पुरातत्व प्रेम का है।
तू अमर है ?
या अमर मैं हूँ–
कि मुहब्बत हो अमर ?
अमरत्व गुण समय का है
प्यार में वह भी, मगर, मूढ़
नश्वर है।

तू सितारों को ज़रा देख,

व्योम के अनगिनत
नक्षत्रों पर नज़र डाल,
जो बँधे चलते हैं परस्पर
प्यार के आकर्षण में;
इनमें हर एक हर दूसरे को
खींचता है अपनी ही तरफ़,
पर मुहब्बत की कशिश
इन की गति को
अवरुद्ध नहीं करती है।
निशिकर को जलधि
पथ के आकार से खींचे, पर
रोक नहीं पाता है;
पातकी शुक्र,
प्रेम की ज्योति की जाज्वल्य मशाल,
रूपवती वसुधा के उरोजों में
प्यार का रस ढाल
नित्य बढ़ता ही चला जाता है
निज मार्ग की गोलाई पर।
धन्य है इन निरासक्त सितारों की
प्रेम-परायणता,
जिसपर सृष्टि का सन्तुलन और समत्व
निर्भर है।

तामसी उल्काएँ कुछ एक,

जो उलझ जाती हैं
मोह की माया में,
गति-धर्म से च्युत
उनका पतन होता है।
प्यार के योग्य वही
जो कि गति-योगी है।

इन सितारों की तरह असमर्थ
हम भी बँधे चलते हैं
प्यार की कोटि कशिश के भीतर;
सफ़र के इस संगम पर
मिल गये हम,
और
तीन दिवस दोनों ने निभाई है
सृष्टि के गति-धर्म की रीति,
अब मगर राहें अलग होती हैं,
भूल न कर,
सफ़र जारी है।
मिलन संयोग की जो घड़ियाँ
निश्चित थीं, बीत चुकीं,
अब अगर हम न बढ़ें
विलग पथों पर अपने
तो प्रलय होती है,
क्योंकि हमारी गति पर क़ायम है

सृष्टि का सन्तुलन
और ज़िन्दगी की लहर का प्रसार।

प्रणयिनी, प्यार के तीन दिवस काफ़ी हैं,
प्यार की खोज अमर है लेकिन;
कोई नक्षत्र नया
उठता है क्षितिज के ऊपर,
और मुझपर उसकी कशिश हावी है,
क़ैद अब तेरी मुहब्बत की नहीं लागू है,
मेरे गति-पूर्ण चरण चंचल हैं,
अब मुझे जाने दे, जाने दे।

बात कुछ शर्म की बेशक है

बात कुछ शर्म की बेशक है,
मगर मजबूरी है,
तीसरी बार
मुहब्बत का गुनहगार हुआ चाहता हूँ।
मन पशेमान है,
शर्मिन्दा है,
दिल मगर बेग़ैरत, बेक़ाबू,
हर पसोपेश से ऊपर,
अधीर धड़कता है।
एक तो ज़िन्दगी छोटी है,
उसपर फिर
पाप करने की इजाज़त का समय
कितना है–
इसे समझाये भी भला क्या कोई !

पारसा, जो कि मुझे ताना दें
मेरे पके बालों का,
या कि आपत्ति करें
मेरी बेधर्मी पर,
वे मुझे माफ़ करें,

मैं गुनहगार।
मेरे नज़दीक, मगर,
पाप की स्वीकृति
पारसाई की प्रथम सीढ़ी है,
और
मैं जिस राह का अनुगामी हूँ,
उसपर बहुत भटके हैं
पुण्य के दीवाने,
यह न बनी, लेकिन,
उनकी, न वे इसके,
यद्यपि इस राह की धूलि के कण-कण ने
मुझे अपनाया है।

पारसाओं से मुझे बैर नहीं,
पर शिकायत है मुझे इनसे—
ये मुहब्बत के मरे कवि-बन्धु,
जो कि दिन-रात
पुण्य शैली में पिरोते हैं तुकें,
और निर्जीव, घिसे छन्दों में पुराने,
पंक्तियाँ ढाल नई, गाते हैं
प्यार की अनन्यता के राग,
सभी झूठे हैं,
या अपरिचित हैं।
प्यार के सत्य से—

सौन्दर्य स्वयं प्यार है, और
सौन्दर्य का प्रति रूप
प्रेम की वेदी है।
इनमें जो सबसे बड़ा भोला हो, उसके
प्रेत से मिलने की मुझे इच्छा है,
क्योंकि वह कह देगा
सभी बात जो कि सच्ची है,
और मुझे आशा है
तुकी तर्कों के प्रतिबन्ध से मुक्त
होगी उसके छन्द की अभिव्यक्ति;
इनके सभी राज़ खुल जायेंगे।
दो चार से बिन प्रेम किये
कैसे भला कोई
प्यार की गहराई की परख पायेगा ?

प्रेयसि, मैंने अब तक दो बार मुहब्बत की है,
और आज फिर तीसरी बार
तुमपर निछावर है दिल,
तुम मेरे प्यार को स्वीकार करो।
मैं ने सुन रक्खा था कथन
प्रेम के ज्ञाताओं का
कि दूसरा प्यार प्रथम प्यार से बेहतर है,
मेरी अनुभूति मगर कहती है,
तीसरे प्यार का रंग

दूसरे प्यार से कुछ गहरा है।
किन्तु मैं कैसे कहूँ
रंग यही अंतिम है ?
कहते हैं, जहाँ तारों से परे
और भी हैं;
मैं बयाँ कैसे करूँ
रंग उन नक्षत्रों के
जोकि अनदेखे हैं, अनजाने हैं ?

अब नहीं तेरा ख़्याल आता है

दिन गुज़र जाता है,
रात आती है, चली जाती है,
पर नहीं तेरा ख़्याल आता है।
फ़िक्र अब मुझको नहीं
तेरे आने की,
और न ग़म
तेरे नहीं आने का;
अब मुझे तुझसे मुहब्बत न रही।

मैंने मान लिया
हार यह मेरी है,
मौत कुछ तेरी भी मगर
इसमें है,
क्योंकि ज़िन्दगी नाम है उस धड़कन का,
जो किसी दूसरे दिल की गहराई में
तड़प भर दे, ग़म भर दे।

यों तो कहने को
हम सभी जीते हैं,
और यह धक-धक-धक

मांस और लोहू के इंजन की
एक आदत है,
मगर हर साँस बेशोला,
जो निकल छाती से बिखर जाती है,
अपनी मजबूरी की गवाही है ।
मौत एक बार सिर्फ़ आती है–
सोच यह बहलाया करें
हम अपने मन को, लेकिन
सत्य तो यों है, कि हम
हर बुझी साँस के अँधेरे में
सौ बार मरा करते हैं;
और हम जीने में
जीने की महज़
नक़्ल किया करते हैं ।

तू, अगर साहस हो,
ज़रा देख हृदय में मेरे,
और जो इसमें गड़ी हैं लाशें
उनको पहचान,
फिर बता मुझको कि तू ज़िन्दा है
या मुर्दा ?

स्वप्न को छलना

रात के तीसरे पहर की
गहराई की
घनी नींद में खोया हुआ
कोई पड़ा सोता हो
भुला सब ग़मो-फ़िक्र मानवी जीवन के—
औ' मुहब्बत की तरस से
ख़ाली हों तहें मन की तो
नींद उसके लिए राहत है;
ऐसे में दबे पाँव
स्वर्ग की रूपवती, मोहिनी
रंगमयी इन्द्रेणी[1] सी,
और लावण्यमयी रति-सी
अप्सरा एक उतर आए,
और छू स्वप्न की जादू-छड़ी से पलकें
उसको उठा ले जाये
तीर पै रवितनया के
किसी शीतल बन में,
जिसके हर पेड़, शिला, पत्थर पर
जमी हो काई,
सुखस्पर्शमयी, कोमल, शीतप्रद और हरी,

[1] ६५ पृष्ठ पर टिप्पणी देखिये

फिर घनी, महकीली शस्य की शय्या पर
लेटा कर उसको,
और बल खा
विद्युत की तरलता से
उसकी भुजाओं में सिमट,
उसके हर अंग में औ' रुए में
विश्व के कुल भोगों का
रस भर दे, मद भर दे;
और फिर बिन कारण रूठ चली जाये–
उस विलासी की दशा कौन कहे ?
वह दशा मेरी है।

यों तो कमी
दुनिया में नहीं हूरों की,
और कहते हैं
सगोत्र हैं सौन्दर्य के सब रूप,
और ये रूप-शिखें ललकाती
प्रतिरूप हैं रूप के उस लवर की,
जिसपर
आदि मनुज ने अपना
तन वारा, मन वारा;
पर, मुझे एक परी–रूह ने
स्वप्न में चूमा है,
और उसके सौन्दर्य के उजियारे से भरे

मेरे नयन अन्धे हैं,
और करक होठों पर
अमीरस की तृषा की
बँध गई ऐसी, कि अब
मद चुम्बन का
उतर अधर पर मेरे
विष बनता है :
इन भुजाओं में स्वयं स्वर्ग
समेटा था कभी मैं ने,
इसलिए इनका अब पाश नहीं भरता है;
स्वप्न जिसका हो, उसे
सत्य से सन्तोष कहाँ मिलता है ?

प्रणयिनी, हमने प्रणय की
सौ बार शपथ ली होगी,
और सौ बार
शिथिल बाहों में सरकता प्यार
कसा है हमने,
और अभिसार के क्षणभंगुर में
नित्य का परिचय खोजा,
और निर्दीप्त गहनता में नयन को
सौ बार परस्पर हमने
दिव्य अगोचर देखा—
या कि माना देखा,

क्योंकि नयनों में उपस्थित होती
दिव्य की ज्योति अगर,
तो न दरकार इन्हें थी
किरण दिनकर की—
और घड़ियों में समर्पण की
क्या नहीं माँगा मैंने,
जो कि तुमने न मुझे दे डाला ?
किन्तु नहीं तृप्ति मिली,
और न हम
सत्य की क़ैद से मुक्त हुए ।

मेरी हर माँग अधूरी थी,
और हर माँग की परिपूर्ति
आशा से कहीं कम ;
जब कभी रागीले,
परदार क्षणों के बल पर
निश्चेष्ट उठे कर मेरे
स्वप्न की स्वर्णमयी काया की
परिधि छूने को,
सत्य की भुरभुरी धूलि लिए वे लौटे;
और वह धूलि निज भाल चढ़ाई तुमने ।
तुम धराशायी हो, नहीं परिचित हो
मेरी उत्तुंग उमंगों से,
जो कि परवाज़ में छूती हैं

गगन की सीमा,
इसलिए धूलि की दो मुट्ठी को
समझकर दैवी सम्पद
ग्रहण किया है तुम ने ।

तुम नहीं मित-सन्तोषी,
मगर मित-ग्रहणी हो,
और तुम स्मारक हो
मेरी धरा-दीनता, मेरी पराधीनता की ।
अब न तुम मुझ से और मुहब्बत माँगो,
मेरी लाचारी पर ज़रा सोचो तो—
मैं तुम्हें प्यार कभी दे पाया क्या ?
और कब तुम भूलीं
कि सतरंगी पाशों में तुम्हारे
बँध नहीं पाया कभी
स्वप्न-रसिक मन मेरा ?
तुम धरा-रूप स्वयं धरती हो,
और तन मेरा विनिर्मित है
मिट्टी से *तुम्हारी*, इसलिए
कुछ तो सहज बन्धन तन के हैं,
मन मगर तन से अलग, ऊपर है;
स्वप्न का अनुरागी, नहीं भक्त है वह
तन की तरल माँगों का ।
अब न तुम मुझसे और मुहब्बत माँगो,

स्वप्न का अभिसारी, नहीं मन
अपना है तुम्हें दे दूँ जो, और
कामना मन की मुहब्बत है;
तन मगर, देन तुम्हारी जो, तुम्हारा है।

न जाने क्यों तुम

न जाने, क्यों तुम
प्यार की इन गिनी घड़ियों में
एक दुनिया की सभी बात किया चाहती हो ?
क्या किया किसने किसीसे
या कहा ऐसा,
कि जो हम-तुम
आपस में नहीं कहते
या किया करते हैं ?
तुम ज़बाँ बन्द करो, तो मैं मुहब्बत कर लूँ।

हमने सिवा बातों के
किया क्या था बचपन भर ?
तब मगर अनदेखी, अनजानी थी
जवानी की कहानी,
और,
यौवनागमन की प्रथम उत्तेजना
कल्पना-सुरंजित यौवन के सपनों की
खोजती थी साधना
वाक्-विवादों में;
हम सिवा बातों के करते भी तो क्या ?

औ' सिवा बातों के
हम जरावस्था में
कर पाएँगे क्या ?
फ़िक्र में मौत की आमद की
मगर ख़ाक बनेंगी बातें !
मुख़्तसिर वक़्त जवानी का मिला जो
इसमें हमें लाज़िम है,
जरा-जीर्ण दिनों में
मन के परचाव का जो बन पाये
सामाँ कर लें;
अब ज़बाँ रोको तो, मुहब्बत कर लें।

यह घनी, गहरी, सुनसान निशा,
यह नहीं बातों का, मुहब्बत का समय है;
तुम्हें मालूम है, प्यार में
होता है समागम
दो रूहों का ?
और वे ख़ामोश इशारों की ज़बाँ से
रूह की दुनिया की परस्पर
बात किया करती हैं।
वाक्छली जीभ नहीं रूहों की
वाक्-चतुराई को समझ पाती है।
बेसमझ बड़बड़ से कहीं इनकी
अपने अनुरागभरे प्राणों के

संभाषण में न बाधा हो,
आओ, हम इनको भी परस्पर
मूक समागम में जुटा लें।

लो रुको, शान्त, निःशब्द सुनो
प्राणों के गहन संगम से समुद्भव
संगीत मधुर, गम्भीर, मदोन्मत, अमर;
इसकी हिलोरों पर सिर धर
चुप सो जाएँ, ताकि न अपनी
इन रूहों की मुलाकात में विघ्न पड़े:
मैं तुम्हें कल बतलाऊँगा
कि तुम सुन्दर हो।

यात्री[2]

धूलि-धूसरित वदन,
सिकुड़े गाल,
आँखें धँसी हुई अंदर को,
नत ग्रीवा,
सूखी लकड़ी सी टाँगों पर
कुबड़ी पीठ, गिरी-अटकी-सी,
उसपर
जीवन के मृत सपनों की
लाशों का गट्ठर
क्षीणकाय तरु से लिपटी
आकाश-लता-सा,
इसकी हड्डी की ममता में
जमा हुआ है,
दृढ़-निश्चय, सन्तोषी
महाकाल-सा;
मुर्दा शाख़ों-सी लटकी
निर्जीव झूलतीं
मुर्झाए कंधों से
बेजान भुजाएँ;
क्षुधा-तृप्ति से क्षीण उदर;

[2] ६५ पृष्ठ पर टिप्पणी देखिये

छाती मरघट-सी सटी हुई
मुर्दार उमीदों की हड्डी से,
बुझी चिता बिन चिंगारी के
जैसे देती सेंक,
उस तरह साँस निसरती,
निरभिलाष, निराश, निरुत्साह।

नहीं शिल्पकार की कृति का यह चित्रण है,
यह मनुष्य है,
लो, इसकी ग्रावाज़ सुनो:

'देव बड़े, दाता बड़े
संकर बड़े भोरे,
किये दूर दुख सबनि के
जिन-जिन कर जोरे,

सेवा सुमिरन पूजिबो
पात-अखत थोरे,
दियो जगत जहँ लगि सबै
सुख, गज, रथ, घोरे'

यह मानव का स्वर,
ग्रावाज़ नहीं पत्थर की;
यह यात्री है,
पुण्य कमाने की ग्रभिलाषा से
ग्राया जो धाम तुम्हारे, शंकर,

लिए पांव में मुक्ति-खोज का चक्कर,
शिव-रात्रि के महा पर्व पर,
चीर अनगिनत नदियों की छातियाँ उभरती,
और फाँद चोटियाँ हिमालय की माला की,
काट हौसला-शिकन मंजिलें
मरु की, मैदानों की।

एक नहीं, दस-बीस नहीं,
महादेव, तुम अपने भक्तों
की अगण्य भीड़ को देखो,
जो कि तुम्हारे
स्वर्ण-जटित मंदिर के कलशों की आभा से
उत्तेजित, आकर्षित, उद्वेगित
प्रतिपल बढ़ी चली आती है
उत्तर से, दक्खिन से, पूरब से, पच्छिम से,
इस विशाल घाटी की छाती पर नागिन-सी लिपटी
हर पथ-पगडंडी पर,
आज तुम्हारे दरवाज़े पर
नतमस्तक होने को।

इनको देखो,
औ' अपनी सत्ता को जानो, शंकर।
जय भोले, जय महादेव,
पशुपतिनाथ, तुम्हारी जय हो;

धन्य तुम्हारी विजय मनुज पर,
उसके मन पर,
और बुद्धि पर !

जीवन की अगनित अगाध मंजिलें
इन्होंने पीछे छोड़ीं,
और इन्होंने एक-लक्ष्य हो
पकड़ा केवल पंथ तुम्हारा;
इस लंबी, विकराल राह में
इनपर मार गिरी ओलों की,
विद्युत की, मेघों की,
और प्रभंजक तूफ़ानों की,
पर इनके दृढ़ संकल्प कंठ का
कब स्वर बदला ?

'देव बड़े, दाता बड़े,
संकर बड़े भोरे,
किए दूर दुख सबनि के
जिन-जिन कर जोरे'

दुख में, सुख में
क्षुधा, तृप्ति में,
कब इनकी श्रद्धा के ऊपर संशय छाया ?
कब इनका विश्वास हिला, शिव-शंभु,
तुम्हारी प्रभुता में,

दानशीलता में, सत्ता में ?

'सेवा सुमिरन पूजिबो
पात-अखत थोरे,
दियो जगत जहँ लगि सबै
सुख, गज, रथ, घोरे'

इनकी ऐसी माँग भला क्या,
जिसका देना, वरद, तुम्हारी
ताक़त से बाहर है ?
कौन तुम्हारे लायक बनने में
इन्होंनें कसर उठाई,
जो इनके प्रति, महादेव, तुमने अपनाई
क्रूर विमुखता ?

जागो नगपति, नटवर जागो,
अपने समाधिस्थ नेत्रों को खोलो,
देखो
अस्थि-पंजरों की माला को
जो कि तुम्हारे चरणों में अर्पित होने को
उत्सुक है, व्याकुल है, विचलित है ।
महामोक्ष के अभिलाषी ये भक्त तुम्हारे,
इन्हें पुत्र का और वधू का
वर देते हैं
भट्ट तुम्हारे निर्विवेक, निर्बुद्धि !

इनकी श्रद्धा का, आकांक्षा का,
इनकी मनुष्यता, औ' इनके असीम तप-बल का
वे करते हैं घोर अनादर।
देखो उनकी उत्सुकता को
जो आते हैं, और निहारो
उदासीनता इनकी,
जो अपना विश्वास लुटा लौटे जाते हैं!

सावधान, हे पंचमुख,
वैराग्य तुम्हारा व्यर्थ, और निष्फल है
यह पथरीली उदासीनता,
यह समाधि, यह तप,
यदि न बचा पाओ तुम अपने भक्तों की निष्ठा को।
मानव की हर एक निराशा में होता है हनन
तुम्हारी सत्ता का कुछ;
अविश्वास मानव का घातक है देवों को।

हे त्रिनेत्र, क्यों चुप हो?
मौन, विभूषण मूढ़ों को, तुमने अपनाया!
तुमसे बढ़कर ज्ञानी हैं क्या भट्ट तुम्हारे,
जोकि तुम्हारा प्रतिनिधित्व करते हैं?
तुम यदि सचमुच महादेव हो,
चमत्कार दिखलाओ कुछ तो,
कुछ अपना देवत्व दिखाओ,

महामोक्ष के अभिलाषी भक्तों को अपने
वर दो,
मुक्ति दो,
मृत्यु दो ;
और हरो तुम इनका संकट,
इनकी पीड़ा,
इनकी ज्वाला,
इनकी भूख,
इनका जीवन।
कुछ आभास हमें भी तो हो
हमने पूजा देव, न पत्थर।

मदन-विनाशक,
हम भी देखें तो प्रचंडता
दहन-शक्ति की,
जोकि तुम्हारे नेत्रों में, सुनते हैं,
अंतर्हित है :
क्षुधा-शरों की नोकें कुछ कम तेज़ नहीं हैं
पंचशर के अनंग बाणों से,
हम प्रहार सहते हैं निशि-दिन इन दोनों के,
और सर्वदा तुम निष्क्रिय हो, चुप हो !

मेरी निष्ठा डोल रही है,
और बुद्धि कहती है, हमने

पूजा है पाषाण निर्हृदय ।
तुम यदि केवल पत्थर की प्रतिमा हो
तो भी बोलो, कह दो
'पत्थर हूँ मैं, इष्ट नहीं हूँ मनुज हृदय का';
क्रोध हमारा क्षमाशील उतना ही
जितनी क्षुधा हमारी,
किंतु हमें सहनीय नहीं वंचना हमारी ।
पशुपतिनाथ, न छोड़ो तुम भी
सोमनाथ की भाँति हमींपर
आविष्कार कठोर सत्य का—
कि हमने ईश जिसे माना था,
वह केवल पत्थर है ।
क़ायम है जब तलक हिमालय
नहीं ज़रूरत हम मनुजों को जड़-देवों की ।
अगर हमारे इष्ट नहीं तुम,
आसन छोड़ो, जाओ,
अगनित अन्य शिला-खंडों में
मिल अपना जड़-धर्म निभाओ;
हमें चाहिए ऐसा भगवत
जो मानव का दिल रखता हो ।

पूर्वज अपने बड़े भोले थे[3]

पूर्वज अपने बड़े भोले थे !
सहज संतोषी, अंधविश्वासी थे
ज्ञान-अज्ञान के भेद से अनभिज्ञ थे,
अनछीले थे ।
सृष्टि के आदि दिनों से प्रचलित थी
क्रमिक उन्नति की परिपाटी,
मगर अभी पनप नहीं पाई थी
मानवी बुद्धि :
अविद्या की अवस्था में
विश्वास परम सुखकर है;
जीवन की समस्त समस्याओं का उन्होंने
हल एक खुदा माना,
कि जिसका कुल दुनिया में
परमान नहीं मिलता था;
और अनस्थित को उन्होंने
बे-अन्त, अनादि, अगोचर कहकर
अपना विधाता जाना ।

निर्दयी प्रकृति की गोदी के निवासी वे,
उसकी प्रचंड चपलताओं के रहम पर

[3] ९५ पृष्ठ पर टिप्पणी देखिये

जीते थे, मरते थे।
बेरहम कारिंदे कुदरत के–
बिजलियाँ, बाढ़, वबा, भुखमरी, बड़वानल,
झुलसती धूप, शरद वर्फ़ीला,
और आकाश की
उद्विग्न, अनवरुद्ध हवाओं की रवें–
बेरोक विचरते थे,
विध्वंस मचाते थे धरातल पर,
मगर नर निर्बुद्धि निरायुध था, निर्बल था।
कोई न कहीं पद्धति थी, विधि थी
नहीं रीति, नहीं क्रम था,
जीवन के किसी पहलू में नहीं संभव था
कल्पनायुक्त, प्रगतिशील, प्रबंधात्मक आयोजन;
ज़िन्दगी घटनाओं से घटी चलती थी।

चर्चा से हवाओं की मुझे याद आई
निकट अतीत के इतिहास की एक घटना :
सैंकड़ों बरस हुए कोलंबस
इस्पेन के एक लालची सम्राट के धन से
जुटा कुछ जल-पोत
हिंद की खोज में उतरा था
समुंदर के तरंगित तल पर ;
हिंद की ख़ैर,
कि रुख़ बदला हवाओं ने,

श्रौर वे बेड़े को बहाकर
ले गईं श्रोर नई दुनिया की !
पाँच सौ बरस का इतिहास हमारा
उन हवाश्रों की लहर की लीला है ।

किन्तु प्रथम पुरखों की तरह
श्रसहाय नहीं हैं श्रब हम;
हम यशस्वी हैं, प्रतापी हैं, प्रबुद्ध हैं,
सभ्य हैं, मानव की नई जाति हैं,
हम परमश्रेष्ठ, क्रमिक उन्नति की
परिपाटी की चरम सीमा हैं;
हमने प्रयोगों से किया है साबित
श्रनस्तित्व खुदा का;
हम स्वयं देव हैं;
श्रौर, हमारी ताक़त निःसीम है,
श्रपरिमेय है ।
बुद्धि की, ज्ञान की, विज्ञान की सत्ता से
हम बदल देते हैं मग नक्षत्रों के ।
कल्पना श्रपने बुज़ुर्गों की जहाँ पहुँच नहीं पाती थी,
हम उन दुनियाश्रों का भ्रमण करते हैं
बैठकर धातु-खटोलों के परों पर ।
हम श्रगर चाहें तो बदल देते हैं
दरयाश्रों की रवानी;
हम बनाते हैं, उठाते हैं गगन में,

फिर गिरा सहराओं में घनों को
कुसुम उपजाते हैं।
अब हमें कुदरत पर क़ाबू है मुकम्मल।

हमने तहें खोली हैं कणों की,
और परमाणु की छाती को टटोला है,
उसमें निहित शक्तियाँ जीवन की
सँजोकर, हमने भरी हैं
विप्लव के बमों के अंदर।
हम नहीं क़ायल हैं
हँसिया-हथौड़े की लड़ाई के;
हमने स्वयं साधा है, समेटा है
प्रलय गोलों में,
जिनसे, अगर चाहें तो, गगन में
आग लगा सकते हैं,
और संपूर्ण जगत के
शून्य में विष भर सकते हैं;
हम, अगर चाहें तो,
सृष्टि की काया को उलटकर रख दें।
मगर इन मूढ़ हवाओं का बुरा हो
कि जिनकी हठधर्मी की शरण ले
जीते हैं हमारे दुर्जन दुश्मन।
कुछ इनकी मनमौजी रवों की दिशा पर
निर्भर है दिशा क्षय की;

ग्रौर, ये कम्बख़्त
न जाने कब क्या रुख़ बदलें,
ग्रौर कहाँ निरपेक्ष उपद्रव कर दें;
इसलिए हम ग्रपने इन गोलों को लिए
चुप बैठे हैं।

टिप्पणी

1 '<u>इन्द्रेणी</u>' नेपाली भाषा में इन्द्रधनुष को कहते हैं।

2 नेपाल देश में काठमाण्डू की विशाल और मनोरम घाटी में भगवान पशुपतिनाथ का सुप्रसिद्ध स्थान है। हर वर्ष शिवरात्रि के पर्व पर लाखों श्रद्धालु व्यक्ति पुण्य के अभिप्राय से वहाँ जाते हैं। १६५५ की शिवरात्रि यात्रा इस कविता का विषय है।

3 हाल ही में एक विदेशी सेनापति ने परमाणु-बम की विनाशक शक्ति की व्याख्या करते हुए कहा था कि इन बमों के बेरोक विस्फोट से क़रीब दो-तिहाई दुनिया का विनाश संभव है; किन्तु विनाश किस दिशा में और किन देशों में होगा, यह बहुत कुछ बम-विस्फोट के समय हवाओं की दिशा पर निर्भर होगा। हवाओं के रुख़ को इच्छानुसार बदलने की शक्ति अभी मनुष्य में नहीं है—यही विचार इस कविता का आधार है।

आगामी प्रकाशन :

१. हव्वा और उसकी तीन बेटियां

२. तीसरी परत